समावेश बखूबी हुआ है कि उनकी विचारधारा तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय जनजागरण के चंहुमुखी चेतनता का कारण बनी। इस बात के प्रमाण अब मिल चुके है कि महर्षि दयानन्द जी तथा उनके गुरू दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का सहयोग अठाहर सौ सतावन के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में रहा है। सह अलग बात है कि कुछ मूलभूत कारणों से उस समय सफलता नहीं मिल सकी मगर महर्षि के भीतर स्वतन्त्रता की आग निरन्तर प्रज्वलित रही तथा उन्होंने सबसे पहले उन कारणों को दूर करने का बिड़ा उठाया जिनके कारण वह आन्दोलन असफल रहा था। हमारा समाज उस दिनों अनेक प्रकार की कुरीतियों से बुरी तरह से जकड़ा हुआ था। जहां एक ओर बाल विवाह, सती प्रथा तथा महिलाओं को न पढ़ाने जैसी कुरीतियों से बुरी तरह से जकड़ा हुआ था। वहीं दूसरी ओर सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का चिन्तन अभाव था। समाज मत-मजहब और उंच-नीच तथा क्षेत्रवाद की संकुचित काराओं में जकड़ा हुआ था। महर्षि जी ने इन समस्त कुरीतियों पर दृढ़ता के साथ कुठाराघात किया।

उन्होंने पैरों की जूती कही जाने वाली तथा मात्र भोग की सामग्री समझी जाने वाली नारी को एकदम गौरव का स्थान देले हुए मनु महाराज जी के शब्दों में उद्घोषणा की-यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। अर्थात् जहाँ नारियों का सम्माान होता है वहीं पर देवता निर्मित होते है। बाल-विवाह और सतीप्रथा आदि को बन्द कराने के लिए उन्होंने ठोस प्रयास किए। उन्होंने जाति-पाति और ऊंच-नीच के अभिशाप से जनमानस को मुक्त करने के लिए समानता और समरसता का मार्ग प्रस्तुत करते हुए कहा कि जन्म से कोई भी ऊंच-नीच नहीं होता बल्कि व्यक्ति के कर्म ही उसे श्रेष्ठ बनाते है। उन्होंने वर्ण और व्यवस्था के न केवल सही अर्थ ही बताए बल्कि उनके सही कार्यान्वयन का मार्ग भी हमारे